पर्यावरण और विकास : चुनौतियाँ और समाधान की दिशाएँ

डॉ0 वीरेन्द सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

शोध सारांश

विकास का संबंध पर्यावरण से है। पर्यावरण समृद्ध है तो विकास की संभावनाएँ भरपूर होती हैं। विकास का आधार संसाधन हैं और संसाधन प्रकृति प्रदान करती है। पर्यावरण व विकास में परस्पर घनिष्ठ संबंध है। इन दोनों को एक दूसरे का पूरक माना जाता है। आर्थिक विकास का संबंध प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की वृद्धि से होता है। अतः यह स्वीकार किया जाने लगा है कि विकास की प्रक्रिया से पर्यावरण को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचनी चाहिये, बल्कि विकास इस प्रकार से किया जाना चाहिये कि पर्यावरण की सुरक्षा हो तथा इसमें निरन्तर अभिवृद्धि हो। यदि पर्यावरण को हानि पहुँचाकर विकास किया गया तो यह स्थायी व टिकाऊ नहीं होगा बल्कि आगे चलकर समाज के लिये घातक व विनाशकारी सिद्ध होगा।

Keywords: *पर्यावरण,विकास, प्रकृति प्रेम,चुनौतियाँ, जलवायु परिवर्तन,समाधान*

पर्यावरण के प्रति जागरूकता भारतीय समाज में आदि काल से रही है। भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्षों पूर्व प्राकृतिक व्यवस्था को आत्मसात करने का मार्ग अपनाया क्योंकि प्रकृति के साथ छेड़छाड़ पूरे जीवमण्डल के लिये खतरा बन सकता था। पर्यावरण के तत्वों जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश तथा वनस्पति आदि के प्रति वेदों में भी असीम श्रद्धा देखी जा सकती है। इसके अलावा पुराण, उपनिषद, श्रीमद्भागवत गीता, रामायण, महाभारत आदि में इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण मिलते हैं कि हमने सदैव प्रकृति की पूजा की है। अथर्ववेद् के पृथ्वी सूक्त में ऋषियों ने कहा है कि ''हे धरती माँ जो कुछ मैं तुमसे लूँगा वह उतना ही होगा कि जिसे तू पुनः पैदा कर सके। मेरे मर्म स्थल पर या तेरी जीवन शक्ति पर कभी आघात नहीं करूंगा।''

हमारे देश में आज भी ग्रामीण महिलाएँ वृक्षों, कुओं आदि की पूजा करती हैं जो कि उनके प्रकृति प्रेम व आस्था का परिचायक है। ग्रामीण महिलाओं में विविध क्रिया–कलापों, आन्दोलनों के माध्यमों से पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम हेतु सतत प्रयास किये हैं। लेकिन विकास की दौड़ में हम अपने संस्कारों को भूल रहे हैं जो चिन्ता एवं चिन्तन का विषय है। विकास के इस दौर मे सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरण संकट की है, पर्यावरण को संरक्षित करना आज की महती आवश्यकता हो गयी है। गाँव से लेकर शहर तक तेजी से विकास हो रहा है। विकास की इस दौड़ में सबसे अधिक हानि जंगलों को हुई है। जंगल किसी न किसी रूप से ग्रामीण जन–जीवन से जुडे हुये हैं। यह ग्रामीणों के लिये जहाँ जीवन यापन के साधन बनते हैं वहीं पर्यावरण की सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जलवायु परिवर्तन इक्कीसवीं सदी की सबसे जटिल समस्याओं में से एक है, इसके

प्रभाव से कोई देश अछूता नहीं रहा है। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी चुनौतियों से कोई देश अकेले नहीं निपट सकता। जलवायु परिवर्तन का पर्यावरण विकास आपदा से सीधा सम्बन्ध है। भारत की अर्थव्यवस्था के विकास में औद्योगिक क्षेत्र के उम्दा प्रदर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है। इलेक्ट्रॉनिक्स, सूचना प्रौद्योगिकी सहित समूचा विनिर्माण क्षेत्र, वस्त्र उद्योग, औषधि उद्योग, प्राथमिक क्षेत्र, रसायन क्षेत्र आदि का राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आर्थिक विकास ने देश की उपभोग शैली को भी प्रभावित किया है। इस परिवर्तन का देश के पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। उच्च विकास दर के लिये इन पर अधिक जोर पड़ा है। अतः भारत के स्थाई विकास के मार्ग की सबसे बडी चुनौती जनसंख्या घनत्व तथा जलवायु और प्राकृतिक संशाधनों पर बढ़ती निर्भरता है।

सुखी, शांत एवं आपदा रहित जीवन की यह पहली शर्त है कि हम उस प्रकृति एवं पर्यावरण को संरक्षित रखें जिसने अपने अनमोल खजाने से मानव जीवन को न सिर्फ सुखमय बनाया है, बल्कि हमें सिर्फ दिया ही है, हमसे कुछ लिया नहीं। उसने हमसे कभी प्रतिदान की अपेक्षा भी नहीं की। दूसरी तरफ हम प्रकृति को कुछ देना तो दूर, उसे संरक्षित तक नहीं रख पा रहे हैं।

वैश्विक परिदृश्य में अंधाधुंध विकास की चाह में पर्यावरण से हद दर्जे की छेडछाड़ का नतीजा आज हमारे समक्ष है। न सिर्फ भारत बल्कि समूचा विश्व आज पर्यावरण असंतुलन की समस्या से जूझ रहा है। संभवतः इसके लिए वह असंतुलित विकास ही जिम्मेदार है जो प्रकृति की उपेक्षा तथा उसका अविवेकपूर्ण दोहन करके किया गया है। प्राकृतिक संसाधनों के अधिकाधिक दोहन तथा प्रकृति विरोधी आचरण का ही यह नतीजा है कि आज आहत प्रकृति ने हम पर पलटवार करना शुरू कर दिया है। वर्तमान में प्रकृति के कहर विविध रूपों में सामने आ रहे हैं। ये हमें चेतावनी भी दे रहे हैं इसके बावजूद भी पर्यावरण को बचाने के लिए जो दायित्व हमें निभाने चाहिए, हम नहीं निभा पा रहे हैं।

विकास एवं पर्यावरण एक ही सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। बढ़ते औद्योगीकरण से जहाँ एक ओर विकास हुआ है वहीं दूसरी ओर पर्यावरण को हानि भी पहुंची है। उद्योगों से निकले प्रदूषण ने वायु, जल व थल को अत्यधिक दूषित कर दिया है। बढ़ता प्रदूषण मानव व जीव जन्तुओं के लिये चिन्ता का विषय बन गया है। प्रदूषण के कारण किसी न किसी रूप में विश्व में विभिन्न प्रकार की समस्याएं सामने आ रहीं हैं। सम्पूर्ण विश्व आज किसी अनहोनी की आशंका से भयभीत है, इसीलिये आज के वैश्विक परिदृश्य में जलवायु परिवर्तन, वैश्विक ऊष्णता, हरित गृह प्रभाव जैसे मुद्दे गम्भीर चिंता का विषय बन गए हैं।

विकास एक व्यापक संकल्पना है और पर्यावरण के साथ उसका जटिल एवं परिवर्तनीय संम्बन्ध है। औद्योगिक एवं तकनीकी प्रगति के साथ विकास की परिभाषा और पर्यावरण की चिन्ता महत्वपूर्ण होती गयी है। उदाहरण के लिये 70–80 वर्ष पूर्व विकास का मतलब बांधों का निर्माण करके बिजली का उत्पादन करना था लेकिन आज विकास का अर्थ बांध बनाने की वजह से विस्थापित हुये लोगों का पुनर्वास करना है। यह पर्यावरण के प्रति दुनिया की चिन्ता को ही दर्शाता है कि आज सारे देश विकास के व्यापक उद्देश्य का अनुसरण करते हैं। मानव विकास सूचकांक भी विकास को जिस वस्तुनिष्ठ पैमाने पर मापता है, उसमें जीवन प्रत्याशा अनिवार्य रूप से जंगल, जल, जमीन, हरियाली, पर्वत, पठार, नदियों और समुद्र से जुडी हुयी है। यह सब एक ऐसे विकास तक पहुँचने को रूपान्तरित करते हैं जहां पर्यावरण को संरक्षित किया जा सके चाहे वो किसी विश्वविद्यालय की

बैठक हो या फिर संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियों की अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ। जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण और विकास की चिन्ता सर्वोच्च प्राथमिकता वाले एजेण्डे में रखी जाती है। वर्ष 2011–12 के लिये भारत की जो आर्थिक समीक्षा प्रकाशित की गयी है उसमें एक नवीन शीर्षक जोड़ा गया है जिसका शीर्षक है, ''अनवरत विकास और जलवायु परिवर्तन।'' यह नया अध्याय इस बात का स्पष्ट संकेत है कि सरकार अब जनता के प्रत्येक तबके को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने के लिये अधिकाधिक कटिबद्ध है। अपने बृहद आयामों में विकास का मुख्य फोकस बुनियादी संरचनाओं के पुनर्निर्माण पर है। आज प्रकृति के साथ तथा प्रकृति के अनुसार चलने की बात की जा रही है इसका कारण यह है कि अब प्रकृति और पर्यावरण को मानव अस्तित्व के बुनियादी कारकों में गिना जाने लगा है।

पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों ने विकास को सदैव गति प्रदान की है और इसलिए हमारी यह जिम्मेदारी बनती है कि हम अपने आने वाली पीढ़ियों के लिए सुन्दर और रमणीक धरती छोडकर जाएँ जैसी हमारे पूर्वजों ने हमारे लिये छोडी थी। विकास के नाम पर होने वाला अंधाधुध औद्योगीकरण आज इस खूबसूरत नीले गृह के अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। पूंजी संचय के लिये होने वाला औद्योगीकरण, ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन, वायुमण्डल के लिये खतरा बन रहा है। ऐसा नहीं है कि इस खतरे से दुनिया अन्जान है। दुनिया के वैज्ञानिकों, सरकारों, जागरूक नागरिकों, राजनेताओं और पर्यावरण विदों के लिये, पिघलते हुये हिमनद, उफनते समुद्र, बदलता मौसम और गर्म होती धरती निश्चित रूप से चिन्ता का विषय हैं।

पर्यावरण का संरक्षण आज हमारी सबसे बड़ी आवश्यकताओं में से एक है। आज इस बात की पहले से अधिक जरूरत है कि विकास की प्रक्रिया को इस प्रकार संसोधित किया जाए कि मनुष्य को सुख–सुविधा के साधन उपलब्ध कराने के साथ ही साथ पर्यावरण का संरक्षण भी होता रहे। राष्ट्रीय योजनाए बनाते समय पर्यावरणीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाये। हमें देश के आर्थिक विकास के प्रयत्नों के साथ–साथ जीवन को धारण करने वाली प्रणालियों और साधनों जैसे मृदा, जल और आनुवंशिक विविधता के संरक्षण पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन की चुनौती भले ही रोजमर्रा की आजीविका के संघर्ष एवं व्यस्त दिनचर्या में लगे लोगों के लिये खबर या अकादमिक विषय सामग्री ही हो, सच्चाई तो यह है कि दूषित हवा, पानी से जुड़ी इस समस्या से हम सभी का जीवन किसी न किसी रूप में प्रभावित हो रहा है। पर्यावरण के संरक्षण में दुनिया के हर इन्सान के प्रयासों की आवश्यकता है किन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब हम सोचने के पारम्परिक तरीके में आमूल परिवर्तन लायें।

ऐसा नहीं है कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास से हमनें प्रगति नहीं की है। आज सूचना–संचार के क्षेत्र में हुयी क्रान्ति से जहाँ मनुष्य ने दुनिया को मुट्ठी में कर लिया है, वहीं अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के विकास से प्रकृति को समझने व प्राकृतिक आपदाओं से निपटने में मदद मिली है। कृषि के क्षेत्र में सम्पन्न हुई हरित–क्रान्ति, चिकित्सा क्षेत्र में हुयी खोजों तथा रक्षा क्षेत्र में हुयी प्रगति से न सिर्फ नागरिकों का जीवन सुरक्षित हुआ है अपितु जीवन स्तर में भी व्यापक सुधार हुआ है। परन्तु हमने विकास का जो तरीका चुना है वह दोषपूर्ण है। विकास की सही परिभाषा धारणीय विकास है अर्थात पर्यावरण व प्रकृति के मौलिक स्वरूप से छेडछाड किये बिना किया गया विकास ही उचित है।

शताधिक वर्षों में जब से मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिये अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियां अर्जित की हैं, सुख सुविधा के साधन जुटाये हैं, बढती आबादी की आवश्यकताओं की

पूर्ति हेतु औद्योगिक क्रान्ति का सहारा लिया है, तभी से प्रकृति का सामान्य रूप विखण्डित होने लगा है। वन कटने लगे, उपजाऊ भूमि पर आवास बनने लगे, बडे–बडे जंगल साफ कर बांधों की योजना बनाई जाने लगी और न जाने कितने ऐसे प्रयोग शुरू किये गये जो प्रकृति के अनुकूल नहीं थे। अतः सामान्य जीवन में परिवर्तन आने लगा। पहले तो प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता में कमी आई और फिर शनैः–शनैः वायु, जल, भूमि सभी कुछ जो जीवन के लिये आवश्यक हैं, प्रदूषित होने लगे जो चिन्ता का कारण हैं।

इक्कीसवीं सदी में अनेक चुनौतियाँ तेजी से अपना जाल फैला रही हैं। इसमें जनसंख्या वृद्धि, कृषि, भूमि व अन्य प्राकृतिक संसाधनों में गिरावट सम्मिलित है। इनमें प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएं हैं– जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदायें, मिट्टी और भूमि की दुर्गति, जैव विविधता का ह्रास, वायु एवं जल प्रदूषण। ये सभी जीवन्त पर्यावरण के सन्तुलन को विचलित कर रहे हैं। अनुभव यह रहा है कि मानव का शान्ति पूर्ण अस्तित्व अब एक दिवा स्वप्न भर रह गया है। आपदाओं का संभावित परिदृश्य हमारे अस्तित्व और धरती माँ के लिये खतरे की लटकती तलवार बन गया है। यह इसलिये हो रहा है क्योंकि हम पंच तत्व– वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और भूमि के बीच सहअस्तित्व और सन्तुलन की पूँजी को खो चुके हैं। पंच तत्वों में परिवर्तनों के कारण ही प्राकृतिक आपदाएं घट रहीं हैं। पिछले 15 वर्षों में चक्रवात, बाढ़, सूखा, बर्फीले तूफान, गर्म और शीत लहरों की आवृत्ति और उग्रता काफी बढ़ गयी हैं। यह केवल भारत में ही नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व में हो रहा है। इन सबके अतिरिक्त ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन पर्यावरण प्रदूषण में अत्यधिक योगदान कर रहा है। औद्योगीकरण व मशीनीकरण की दुनिया में यह सबसे बड़ी चुनौती मानी जा रही है। पृथ्वी का तापमान एक ऐसे नाजुक मोड़ पर पहुंच चुका है जिसका बदलता हुआ रूख पृथ्वी के विनाश का कारण बन सकता है। इस सन्दर्भ में दुनिया के लगभग सभी वैज्ञानिक चिन्तित हैं। वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन, पृथ्वी की हरियाली के लिये, वनों, कृषि तथा समानतापूर्ण जीवन के लिये भारी खतरा हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारक कार्बन डाई आक्साइड की अधिक मात्रा से गर्माती धरती का कहर बढ़ते तापमान के रूप में अब दृष्टिगोचर होने लगा है। वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड की निरन्तर वृद्धि हो रही है। औद्यागिक क्रान्ति के पहले वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड की मौलिक मात्रा 0.029 प्रतिशत या 290 पी0पी0एम0 थी जो कि वर्तमान समय में बढकर 0.0379 प्रतिशत या 379 पी0पी0एम0 हो गयी है जो कि 25 प्रतिशत की वृद्धि का द्योतक है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की एक विज्ञप्ति के अनुसार लगभग 5.7 लाख टन कार्बन डाई आक्साइड वायु मण्डल में घुलकर उसे जहरीला बना रही है। वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड की वृद्धि के कई कारण हैं। कारखानों की चिमनियों से निकलने वाली गैसों, जीवाश्म तथा ईंधन के जलने आदि से भारी मात्रा में कार्बन डाई आक्साइड गैसों का उत्सर्जन हो रहा है। जो आने वाले समय के लिए खतरे की घण्टी साबित हो सकती है।

आई0पी0सी0सी0 की रिपोर्ट में बताया गया है कि प्रत्येक वर्ष वातावरण में 380 करोड़ टन कार्बन डाई आक्साइड गैस घुलती है। यह स्थिति तब है जबकि पेड़–पौधे और समुद्र अपनी पूरी क्षमता से कार्बन डाई आक्साइड सोख रहे हैं। इसी प्रकार प्रति वर्ष लगभग 52 करोड़ टन मीथेन गैस हवा में पहुँच रही है। ग्रीन हाउस गैसों में एक प्रमुख गैस नाइट्रस आक्साइड है, यह गैस वातावरण में लगभग 0.25 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती है बल्कि वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड तथा अन्य गैसों की बढ़ती मात्रा से हरित गृह प्रभाव में वृद्धि हो रही है जिसके

परिणाम स्वरूप पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि हो रही है। पृथ्वी के तापमान में इतनी वृद्धि हो चुकी है कि यदि उपयुक्त कारणों के द्वारा हरित गृह गैसों में इसी दर से वृद्धि होती रही तो 21वीं शदी के अन्त तक तापमान में 1.5^0 से 5.4^0 सेल्सियस तक की वृद्धि हो जायेगी। वर्तमान में पृथ्वी का औसत तापमान 15^0 सेल्सियस है और आने वाले कुछ वर्षों में विश्व का तापमान लगभग 0.5^0 सेल्सियस बढ़ने की सम्भावना है। बढ़ते हुये तापमान की वजह से विश्व के लगभग सभी हिमग्लेशियरों का पिघलना प्रारम्भ हो चुका है। हिमग्लेशियरों के तेजी से पिघलने के कारण नदियों के जल में वृद्धि होगी, पार्शवीय अपरदन से भू–स्खलन में वृद्धि होगी, जिसके फलस्वरूप नदियों के तलों में मलवे का जमाव बढ़ेगा व नदियों में क्षमता से अधिक जल आने की वजह से बाढ़ की समस्या उत्पन्न होगी। कुछ समय बाद ग्लेशियरों के समाप्त होने पर जल का संकट होगा और सूखे की आपदा से दो–चार होना पड़ेगा। वनस्पतियाँ समाप्त हो जायेंगी। इससे न केवल मनुष्य बल्कि जीव जन्तुओं के सामने खाद्य संकट पैदा हो जायेगा।

पूरी दुनिया में वैश्विक गर्मी का कारण बढ़ता मशीनीकरण ही माना जा सकता है। जहां मोटर गाड़ियों में हजारों लीटर डीजल, पेट्रोल खर्च होता है, वहीं कृषि कार्य में भी अब डीजल, पेट्रोल की खपत बढ़ने लगी है। मशीनीकरण से जहां पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है वहीं ग्रामीण विकास में अहम भूमिका निभाने वाले (मधुमक्खी, तितली, गौरैया सहित अन्य) जीव–जन्तु लगभग खत्म होते जा रहे हैं।

वर्तमान में ग्रीन हाउस के बढ़ जाने के कारण प्राकृतिक चक्र गड़बड़ा रहा है। यद्यपि समस्त पृथ्वी के वातावरण में परिवर्तन होना एक प्राकृतिक घटना है किन्तु पिछले कुछ दशकों से पृथ्वी का वातावरण अत्यधिक असन्तुलित हो गया है। इस परिवर्तन के लिये मानव जनित कारण जैसे औद्योगीकरण, यातायात के साधनों का विकास व वनों का विनाश आदि जिम्मेदार हैं। इसी सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र महासचिव का कहना है कि– ''जलवायु परिवर्तन हमारे समय का प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दा है जिससे पर्यावरण नियामकों को सबसे बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। इसके साथ आर्थिक, स्वास्थ्य, खाद्य उत्पादन, सुरक्षा व अन्य संकट भी बढ़ रहे हैं।''

इस बढ़ते तापमान का असर विश्व भर के मौसम तन्त्र पर पड़ रहा है, जिससे कई समस्यायें उत्पन्न हो गयी हैं। जहाँ विश्व के कई क्षेत्रों मे भारी बारिश हो रही है, वहीं दूसरी ओर कई क्षेत्र सूखे की चपेट में हैं। इसके परिणामस्वरूप उपज प्रभावित हो रही है। जिससे खाद्यान्न संकट पैदा हो रहा है। इस बात की भी सम्भावना है कि ध्रुवों की बर्फ पिघलने से समुद्री जल सतह की ऊँचाई में वृद्धि होगी और अनेक निचले स्थलीय भाग जलमग्न हो जायेंगें। यह अनुमान है कि वर्तमान ताप वृद्धि की गति से अगले 100 वर्षों में पृथ्वी का तापमान 3^0ब तक बढ़ जायेगा और जलीय स्तर में 10–15 से0मी0 तक की वृद्धि से विश्व की स्थिति बहुत अस्त–व्यस्त हो जायेगी। अनेक देशों के महत्वपूर्ण नमभूमि क्षेत्र, कच्छ वनस्पतियाँ और प्रवालभित्ति क्षेत्र समाप्त हो जायेंगे जिससे सम्पूर्ण विश्व को जैव–विविधता और उनसे प्राप्त होने वाले आर्थिक लाभों से वंचित होना पड़ेगा, निचले पारिस्थितिकी तंत्र नष्ट हो जायेंगे, नवीन परितंत्रों की रचना होगी तथा प्राणियों की जीवन शैली पर इसका दीर्घकालीन असर पड़ेगा।

वायुमण्डल में ओजोन का निर्माण एक स्वाभाविक प्राकृतिक क्रिया है, जब सूरज की किरणें वायुमण्डल की ऊपरी सतह से टकराती हैं तो उच्च ऊर्जा विकीर्णन से आक्सीजन का कुछ भाग अणु आक्सीजन से मिलकर ओजोन में बदल जाता है। ऐसा वायुमण्डल में विद्युत अपघटन तथा मोटर वाहनों के विद्युत स्पार्क से भी होता है। यह ओजोन एक पर्त के रूप में समताप

मण्डल में पृथ्वी से लगभग 30 किलोमीटर की ऊँचाई पर रहती है। यह वस्तुतः एक सुरक्षा कवच के रूप में कार्य करती है और सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न पराबैगनीं किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकती है। पराबैगनीं किरणें बहुत ही हानिप्रद होती हैं, इनसे विभिन्न प्रकार की बीमारियों के होने का खतरा बना रहता है। पिछले कुछ वर्षों में सुख–सुविधाओं को अतिशय महत्व देकर इसके लिये क्लोरो फ्लोरो कार्बन का निर्माण कर हमने स्वयं आत्मघाती हथियार चला दिये हैं। क्लोरो फ्लोरो कार्बन का उपयोग शीतउपकरणों जैसे ए0सी0, रेफ्रिजरेटर आदि में कूलेन्स के रूप में किया जाता है। जिसका एक गुण धर्म यह भी है कि ये एक बार वायुमण्डल में छोड़े जाने पर नष्ट नहीं होते और सीधे वायुमण्डल की ओजोन परत पर हमला कर उसे नष्ट करते रहते हैं, जिससे सूरज से आने वाली पराबैगनीं किरणों को पृथ्वी में प्रवेश करने का अवसर मिल जाता है। यह जनसाधारण से सम्बन्धित ऐसी वैश्विक समस्या है जिसके भविष्य में गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। हमें गम्भीरता से इस विषय पर चिंतनकर शनैः–शनैः उन उपकरणों का उपयोग कम करना होगा जिनमें क्लारो फ्लोरो कार्बन्स का उपयोग होता है। शासन स्तर पर भी रेफ्रिजरेटर, एअर कन्डीशनरों, परफ्यूम, एयरो सोल्स, खेतों में छिड़काव की जाने वाली दवाइयों आदि पर प्रतिबन्ध लगाया जाना सुनिश्चित किया जाए।

अम्लीय वर्षा एक ऐसी पर्यावरणीय समस्या है जिसका प्रभाव बहुत लम्बे समय तक रहता है और दूसरे देश अंजाने में ही किसी एक देश की गलतियों का खमियाजा उठाते रहते हैं। वस्तुतः विभिन्न उद्योगों की विविध उत्पादन प्रक्रियाओं से निकली कार्बन डाई आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड तथा नाईट्रिक आक्साइड जैसी गैसें जब चिमनियों से निकलकर वायुमण्डल में जाती हैं तो वहां पर जलवाष्प से मिलकर क्रमशः कार्बोनिक अम्ल तथा नाईट्रिक अम्ल बनाती हैं और वर्षा के साथ यह अम्ल पृथ्वी पर वापस आ जाते हैं। इस वर्षा से जमीन की मिट्टी में अम्लीयता बढ़ जाती है और पी0एच0 मान में कमी होने के कारण मिट्टी के उपजाऊपन पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है। जंगल नष्ट हो जाते हैं, बड़े–बड़े भवन, इमारतें धराशायी हो जाती हैं। पानी दूषित हो जाता है तथा जलीय जीवों और वनस्पतियों को भारी नुकसान पहुंचता है। फसलों व सब्जियों आदि के दूषित हो जाने से इसका सीधा असर मानव स्वास्थ्य पर पड़ता है।

विकास की दौड़ में जीवन की सबसे मूल्यवान सम्पदा जल पर भी संकट है। जो जल बचा हुआ है वह भी दूषित होता जा रहा है यही हॉलाकि जल संकट से निपटने के लिये पुख्ता रणनीति बनाई जा रही हैं। राज्य सरकारों और केन्द्र सरकारों ने जल को बचाने और प्रदूषित जल की समस्याओं से निपटने के लिये बजट में उल्लेखनीय वृद्धि की भी रही है। केन्द्र सरकार की ओर से ग्रामीण विकास के साथ ही पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भी अनोखी पहल की जा रही है। लेकिन जैसा परिणाम निकलना चाहिए वैसा नहीं निकल पा रहा है।

यही कारण है कि आज पूरा भूमण्डल जलवायु परिवर्तन के प्रभाव में आ गया है। जलवायु में होने वाला यह परिवर्तन ग्लेशियरों व आर्कटिक क्षेत्रों से लेकर उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों तक को प्रभावित कर रहा है। यह प्रभाव अलग–अलग रूप में कहीं ज्यादा तो कहीं कम पड़ रहा है। भारत का सम्पूर्ण क्षेत्रफल करीब 32. 44 करोड़ हेक्टेयर है, इसमें 14.26 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में खेती होती है अर्थात सम्पूर्ण क्षेत्रफल के 47 प्रतिशत क्षेत्र में। इस तरह मौसम परिवर्तन देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या को प्रभावित कर सकता है। भारत में मौसमी बदलाव एक प्रमुख प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। देश का बहुत बड़ा क्षेत्र बाढ़ की विभीषिका को झेलता आ

रहा है परन्तु विगत दो दशकों से बाढ़ के स्वरूप, प्रवृत्ति और आवृत्ति में भारी परिवर्तन देखा जा रहा है। ऐसे बदलाव के चलते कृषि, स्वास्थ्य, जीवन–यापन आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और जान–माल की उत्पादकता आदि की क्षति का स्तर भी बढा है। इस मौसम बदलाव का दूसरा प्रमुख प्रभाव सूखे के रूप में देखा जा सकता है। तापमान वृद्धि व वैश्वीकरण की दर तीब्र होने के परिणामस्वरूप सूखा ग्रस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। मौसम बदलाव के चलते वर्षा समय अनुसार नहीं हो रही है और उसकी मात्रा में भी कमी आई है। मिट्टी की जल ग्रहण क्षमता का कम होना भी सूखे का एक प्रमुख कारण है। बहुत से क्षेत्र जो पहले उपजाऊ थे, आज बंजर हो गये हैं तथा वहां की उत्पादकता भी समाप्त हो रही है।

पिछले दो दशकों में चुनौतियाँ अधिक मुखर हुई हैं। पर्यावरण और वन मंत्रालय की 2009 की रिपोर्ट की यदि हम बात करें तो भारत के सामनें मौजूद पाँच प्रमुख चुनौतियों को दिखाया गया है, जो इस प्रकार हैं– जलवायु परिवर्तन, खाद्य सुरक्षा, जल सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा और शहरी करण का प्रबन्धन। जलवायु परिवर्तन हमारी प्राकृतिक प्रणालियों में दखल दे रहा है और देश की कृषि पर उसका सबसे खराब असर पड़ने की संभावना है। देश के 58 प्रतिशत लोग अपनी आजीविका के लिये कृषि पर निर्भर हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से प्रमुख नदियों के जल स्रोत पिघल रहे हैं तथा समुद्र के जल स्तर में वृद्धि से तटीय क्षेत्रों और वहाँ की आबादी को खतरा बना हुआ है। वहीं भारत की पर्यावरण स्थिति रिपोर्ट 2021 (State of India's Environment Report 2021) के अनुसार, 17 सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) पर 2020 की रैंकिंग की तुलना में भारत की रैंक दो स्थान गिरकर 117 हो गई है।

यदि हम पर्यावरण के सन्दर्भ में विश्व पटल की पूर्व वर्षों की स्थिति का अवलोकन करें तो कुछ स्थिति हमारे सामने बहुत स्पष्ट नजर आती हैं। पर्यावरण विशेषज्ञ और जनसंख्या के क्षेत्र में विशेष रूप से कार्य करने वाले डेमोग्राफर्स ने लगातार बढ़ती जनसंख्या और औद्योगिक विकास के बढ़ते प्रदूषण से बहुत पहले ही पूरे विश्व में पैदा होने वाली विविध विषमताओं से आगाह कर दिया था और यह चेतावनी भी दी थी कि भविष्य में प्राणी मात्र में सुखमय और निरापद जीवन के सामने कई विकराल और कठिन समस्याएं आवश्यक रूप से आने वाली हैं। समय रहते यदि इन समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया गया तो कुछ भी अनचाहा होना सम्भव है। संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम ने विश्व को पर्यावरण संकट की चेतावनी देते हुये तत्काल एवं ठोस प्रभावी कदम उठाये जाने की आवश्यकता पर टिप्पणी देते हुये कहा है कि यदि–''विश्व को सम्भावित प्रलयकारी शक्तियों से बचाना है तो तत्काल आवश्यकता है कि विश्व के विकसित देश कार्बन उत्सर्जन में त्वरित कटौती करें एवं विकासशील अर्थव्यवस्था भी इस दिशा में आवश्यक कदम उठाये।''

प्रश्न उठता है कि आखिर यह समस्याएँ पैदा कैसे हुई प्रकृति के अंधाधुंध दोहन एवं संसाधनों के असीमित प्रयोग से प्राकृतिक असंतुलन पैदा हो गया है। वनों की अविवेकपूर्ण कटाई, बड़ी–बड़ी परियोजनाओं, असीमित खनन, डीजल पेट्रोल, कोयला तथा अन्य पेट्रोलियम पदार्थों का अंतहीन दोहन व इनके दहन से जल, वायु, मृदा आदि प्रदूषित हो चुके हैं। इन सभी कारणों से पारिस्थितिकी असंतुलन पैदा हो गया है। विकास के वर्तमान युग में जहाँ पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण का परिरक्षण अनिवार्य है, वहीं विकास का पोषणीय होना भी आवश्यक है। इसलिए विकास के पथ पर चलते समय जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मिट्टी के कटाव, मिट्टी की बढ़ती लवणता व क्षारीयता, मरुस्थलीकरण, वृक्षों

की अंधाधुंध कटाई, ध्वनि प्रदूषण आदि से बचने का भरसक प्रयास किया जाना चाहिये, ताकि वर्तमान व भावी पीढ़ी दोनों के हितों की रक्षा की जा सके और लोगों के स्वास्थ्य व उत्पादकता पर पड़ने वाले कुप्रभावों से बचा जा सके। मानव समाज वर्तमान एवं भविष्य की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं की भरपायी सुदृढ़ रुप से कर सके, इसके लिये पर्यावरण नीतियों के अनुरुप विकास योजनाओं को लागू करना आवश्यक हो गया है। अतः धारणीय आर्थिक विकास के लिये पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण का परिरक्षण अति आवश्यक है।

मानवीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की सन्तुष्टि, विकास का प्रमुख लक्ष्य है। देश के अधिकतर लोगों की रोटी, कपडा, मकान और रोजगार की आवश्यकताएं पूरी नही हो पा रही हैं और प्राथमिक आवश्यकताओं के आगे वे यदि बेहतर जीवन की अपेक्षा करते हैं तो उनका ऐसा सोचना उचित भी है। एक ऐसा संसार जिसमें असमानता व्याप्त हो, वह पर्यावरणीय एवं अन्य संकटों के प्रति सदैव असंवेदनशील बना रहेगा। सम्पोषणीय विकास की दरकार है कि सभी की बुनियादी जरूरतें पूरी हों और सभी को बेहतर जीवन जीने का अवसर मिल सके।

पर्यावरण की चिन्ताओं के सन्दर्भ में सम्पोषणीय विकास भारतीय नीति और नियोजन की आवर्ती विषय वस्तु बनी हुई है। सम्पोषणीय विकास के स्तम्भ संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों में निहित है। न्यायपालिका ने अनुच्छेद 21 की विषद व्याख्या करते हुये कहा है कि स्वच्छ वातावरण का अधिकार, सम्मान सहित जीने का अधिकार सभी सम्बन्धित अधिकारों में समाविष्ट है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2008 में भी प्रयत्न किया गया है कि पर्यावरण के सरोकारों को विकास की गतिविधियों में प्रमुख स्थान दिया जाये। सरकार अपनी नीतियों के जरिये समस्याओं को विकास प्रक्रिया के साथ जोड़ने का प्रयत्न करती रही है ताकि पर्यावरण में कोई स्थाई बदलाव लाये बिना आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। सन् 2012 ई0 में स्टॉकहोम में हुये मानवीय पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की 40वीं वर्ष गांठ(1972) और रियो–डि–जिनेरियो में सम्पन्न पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की 20वीं वर्ष गांठ(1992) का वर्ष था। स्टॉकहोम में इन्दिरा गांधी ने कहा था पर्यावरण को कोई क्षति पहुंचाये बिना आर्थिक विकास के मापन में सम्पूर्ण सामाजिक सम्पोषणीयता का आयाम जोड दिया जाये।

अर्थात् सम्पोषणीय विकास के पथ पर भारत की यात्रा जहां हर्ष का विषय है, वहीं आत्म विश्लेषण का कारण भी है। यह कहानी सन् 1980 ई0 तथा सन् 1990 ई0 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों से शुरू होती है, जब आर्थिक सुधारों की शुरूआत हुई थी और जिसके कारण ही भारत की आर्थिक विकास दर को पंख लगे थे। यह वह समय था जब विश्व के अनेक देश पर्यावरण की समस्या को लेकर चिन्तित हो रहे थे और साथ ही उनका निवारण करने का प्रयास कर रहे थे। ब्राजील की राजधानी रियो–डि–जिनेरियो में 1992 में हुआ विश्व पृथ्वी सम्मेलन इन्हीं सब चिन्ताओं को सामने लाने और उनका समाधान खोजने की कोशिश थी। पिछले दो दशकों में भारत की आर्थिक विकास की गति अप्रत्याशित रूप से तेज रही है। परन्तु इसका एक दुःखद पहलू यह भी रहा है कि मानव विकास और पर्यावरण सम्पोषणीयता के सूचकांकों में अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है। जो एक दुःखद पहलू का विषय है।

जलवायु परिवर्तन तेज़ रफ़्तार से हो रहा है द्ट औद्योगिक क्रांति के बाद पृथ्वी का औसत तापमान 1.1 डिग्री बढ़ चुका है जिसका लोगों के जीवन पर व्यापक असर हुआ है, और अगर मौजूदा रुझान इसी तरह से जारी रहे तो इस

सदी के अंत तक वैश्विक तापमान में बढ़ोत्तरी 3.4 से 3.9 डिग्री सेल्सियस तक हो सकती है. मानवता के लिए इसके विनाशकारी नतीजे होंगे। स्पेन के मैड्रिड शहर में 2 दिसंबर 2019 से शुरू हुए वार्षिक यूएन जलवायु सम्मेलन (कॉप–25) से ठीक पहले यह चेतावनी जारी की गई है।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के बारे में तथ्यों के सामने आने से चिंता है– विशेषकर चरम मौसम वाली घटनाओं और उनसे होने वाले असर के बारे में। विश्व मौसम विज्ञान संगठन का ताज़ा ग्रीनहाउस गैस बुलेटिन दर्शाता है कि वातावरण में तीन प्रमुख ग्रीनहाउस गैसों ,कार्बन डाय ऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड – का स्तर लगातार बढ़ रहा है जिससे मानवता के भविष्य के लिए ख़तरा पैदा हो रहा है।

अगर यह रुझान जारी रहे तो फिर धरती के तापमान में वृद्धि होगी, जल सकंट पैदा होगा, समुद्री जल स्तर बढ़ेगा और समुद्री व भूमि पारिस्थितिक तंत्रों के लिए ख़तरा पैदा हो जाएगा। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण संस्था (UNEP) ने अपनी ताज़ा रिपोर्ट में सचेत किया है कि पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने के लिए वर्ष 2020 से 2030 तक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में प्रतिवर्ष 7.6 फ़ीसदी की कमी सुनिश्चित करना ज़रूरी है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह एक आसान लक्ष्य नहीं है और उपलब्ध अवसरों की अवधि लगातार सिकुड़ रही है।

भारत अभी भी एक विकासशील देश है और अन्य अनेक देशों की तरह यह भी पर्यावरणीय मुद्दों में उलझा हुआ है। फिर भी भारत सरकार प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दों पर ध्यान दे रही है और इस चिन्ताजनक स्थिति से निपटने के लिये अनेक नीतियाँ भी बना रही है परन्तु उनको सही मायने में लागू करने के लिये अभी काफी कुछ करना होगा।

इन समस्याओं से निपटने हेतु पर्यावरण संरक्षण और वन प्रबन्धन के लिये उत्तरदायी भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय ने अनेक कानून बनाये हैं– जल संरक्षण हेतु जल प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974, जल प्रदूषण (निवारण एवं नियन्त्रण) उपकर अधिनियम 1977, वायु प्रदूषण (निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम 1981, भारतीय वन अधिनियम 1927, जीव जन्तुओं के प्रति क्रूरता अधिनियम 1960, वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972, वन संरक्षण अधिनियम 1980, पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम 1986, सार्वजनिक लोकदायित्व बीमा अधिनियम 1991, राष्ट्रीय पर्यावरण अधिनियम 1995, राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम 1997 आदि। संयुक्त राष्ट्र जैविक विविधता सम्मेलन सन् 1992 ई0 के उद्देश्यों को प्राप्त करने की गरज से सन् 2002 ई0 में जैविक विविधता अधिनियम पारित किया गया। इसका उद्देश्य जहां जैव विविधता की रक्षा करना है वहीं उससे सम्बन्धित ज्ञान का वैज्ञानिक और सुविचारित ढंग से प्रसार करना है। सन् 1980 ई0 में वन संरक्षण अधिनियम तथा सन् 1972 ई0 में वन्य जीवों के संरक्षण हेतु कानून बनाया गया, जिससे वन्य जीवों के अवैध शिकार और व्यापार पर सख्ती से रोक लगायी जा सके।

केन्द्र सरकार ने घातक पदार्थों के कारोबार के दौरान दुर्घटना से होने वाली क्षति के मुआवजे आदि के लिये राष्ट्रीय पर्यावरण न्याय अधिकरण गठित करने के लिये सन् 1995 ई0 में कानून बनाया। कतिपय प्रतिबन्धित क्षेत्रों में पर्यावरण सम्बन्धी स्वीकृति के मामले निपटाने के लिये सन् 1997 ई0 में राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण का गठन करने वाला कानून पारित किया गया। इसी सिलसिले में हाल ही में राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण का गठन किया गया है। सन् 1972 ई0 में नेशनल कमेटी फॉर एन्वॉयरमेंट प्लानिंग एण्ड कोऑर्डिनेशन (एन0सी0ई0पी0सी0) की स्थापना की गयी। सन् 1972 ई0 में केन्द्र व

राज्य स्तरीय प्रदूषण नियंन्त्रण मंडल की स्थापना की गई। सन् 1980 ई0 में श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में पर्यावरण हेतु तिवारी कमेटी बनाई गई। सन् 1980 ई0 में पहली बार केन्द्र व राज्य स्तर पर पर्यावरण विभाग की स्थापना की गई।

पर्यावरण की चुनौतियों का सामना करने में उत्पादन और खपत के तरीकों में ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके साथ ही जीवन शैली से जुडे मसलों पर भी ध्यान देने की जरूरत है। विश्व के सभी देशों को समेकित रूप से कार्बन तथा जैव ईंधनों पर आधारित उत्पादन व खपत के तरीकों को बदलकर नवीकरणीय ऊर्जा पर आधारित व्यवस्था को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। पर्यावरण संरक्षण में हर व्यक्ति को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। खासकर उन लोगों को जो ऊर्जा के खर्च को आसानी से वहन कर सकते हैं। पर्यावरण सेवित प्रौद्योगिकी को अपनाकर कार्बन उत्सर्जन में कमी लायी जा सकती है। निजी मोटर वाहनों के इस्तेमाल में संयम बरतना होगा। स्वच्छ ईंधनों के उपयोग को बढावा देते हुये सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा जैसे पारम्परिक ऊर्जा श्रोतों को अपनाना होगा। व्यर्थ वस्तुओं को पुनर्चक्रण के द्वारा पुनः उपयोगी बनाने और कूडे–करकट को ऊर्जा में बदलने वाली प्रौद्योगिकी को व्यावहारिक रूप देना होगा। हरित या साफ–सुथरी तकनीकी का विकास कर उसे ज्यादा से ज्यादा प्रचलन में लाना होगा। हमारे सामने वैकल्पिक श्रोतों को विकसित करने की जरूरत है। क्योंकि वैकल्पिक श्रोतों से ही हम विकास की गति तेज कर सकते हैं तथा तरक्की की राह पर अग्रसर होते हुये विकास के साथ ही साथ पर्यावरण की भी रक्षा कर सकते हैं।

प्रकृति और पर्यावरण के प्रति अगर हम अपने दायित्वों की अनदेखी इसी तरह करते रहे तो अभी प्रकृति के कोप के रूप में जो खंड प्रलय हमें हिला रही हैं वे पूर्ण प्रलय का रूप धर हमें निगल लेंगी। यदि अभी भी हम धारणीय विकास के द्वारा पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण की दिशा में ध्यान देकर प्रकृति के जख्मों पर मरहम लगाना शुरू कर दें, तो भावी विनाश से बच सकते हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि वर्तमान में विश्व के विभिन्न मंचों में सर्वाधिक चर्चा का विषय विकास एवं पर्यावरण के अलावा शायद ही कोई अन्य विषय होगा। आजकल यह मुद्दा विश्व के ज्वलंत मुद्दों में से एक हो गया है जाहिर है कि पर्यावरणीय पक्ष की अनदेखी करके किया जाने वाला विकास अंततः कहाँ तक उचित है? जबकि दृष्टव्य परिदृश्य पृथ्वी पर से जीवन के अस्तित्व को ही खत्म कर देगा। अतः जब बात मानव जाति के अस्तित्व की हो तो इस बात की सबसे ज्यादा आवश्यकता है कि सभी राष्ट्रों के द्वारा विकास के ऐसे मॉडल को अपनाया जाए जो पर्यावरण का हितैषी तथा प्रकृति के अनुकूल हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भल्ला, जी.एस. (एडि.) (1994). इकॉनॉमिक लिबरलाइजेशन एंड इंडियन एग्रीकल्चर, इंस्टीट्यूट पफॉर स्टडीज इन इंडस्टिंयल डेवलपमेंट, नई दिल्ली
2. चाँद, महेश और पुरी वी.वेफ. (1983). रीजनल प्लानिंग इन इंडिया, एलाइड पब्लिशर्स लिमिटेड, नई दिल्ली
3. इलियट, जेनिपफर ए. (1994)- एन इंटोडक्शन टू सस्टेनेबल डेवलपमेंट, रूटलेज, लंदन
4. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1998)- 'वाटर स्टेटिस्टिक ऑफ इंडिया'. सेंटंल वाटर कमीशन, नई दिल्ली
5. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. (1999)- 'इंटीग्रेटेड वाटर रिसोर्सज डेवलपमेंट – ए प्लान फॉर एक्शन'. नेशनल कमीशन फॉर इंटिग्रेटेड वाटर रिसोर्स डेवलपमेंट,

मिनिस्ट्री ऑफ वाटर रिसोर्सज, नई दिल्ली

6. इवान इलिच (1981) : द डिलिंविंफग ऑफ पीस एंड डेवलपमेंट, गांधी मार्ग
7. एरियाज ऑफ इंडिया, इनवायरनमेंटल मैनेजमेंट, 20(3)
8. महबूब–उल–हक (1993) : ज्यूमन डेवलपमेंट इन ए चेंजिंग वर्ल्ड, यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम (यूएनडीपी) ऑकेजनल पेपर्स–4